बी॰ए॰ भाग-3
हिन्दी-प्रतिष्ठा
पेपर-7
'भाषाविज्ञान की शाखाएँ'

रमेश कुमार यादव
हिन्दी-विभाग
डी॰के॰ कालेज, डुमराँव बक्सर

वर्णनात्मक भाषा विज्ञान —

किसी भाषा के काल-विशेष के स्वरूप का अध्ययन और विश्लेषण कर कुछ नियमों का निर्धारण करना वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत आता है। जैसा वर्णनात्मक नाम से ही स्पष्ट है, इसमें भाषा का वर्णन या विश्लेषण रहता है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान को ही दूसरे शब्दों में व्याकरण कहते हैं। इस शाखा के सम्बन्ध में इतना ध्यान में रखना चाहिए कि यह किसी भाषा के काल-विशेष से ही सम्बद्ध होती है। हम ध्वनि का वर्णन करें या पद का या वाक्य का, किन्तु ये सारे तत्व किसी एक काल के ही होंगे।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का लक्ष्य भाषा के विकास को दिखाना नहीं होता और न किसी अन्य भाषा से उसकी तुलना करना होता है। इसीलिए द सोसूर ने वर्णनात्मक भाषाविज्ञान को स्थित्यात्मक कहा है जिसका सर्वोत्तम उदाहरण पाणिनीय व्याकरण है। पाणिनि की विश्लेषणात्मक क्षमता पर विदेशी मुग्ध रह गये हैं और उन्होंने स्वीकार किया है कि भाषा के वर्णनात्मक अध्ययन का इससे उत्कृष्ट उदाहरण संसार के इतिहास में अलभ्य है।

आधुनिक भाषावैज्ञानिक अध्ययन में

वर्णनात्मक प्रणाली का रूप बहुत प्रमुख हो गया है और वह स्वतन्त्र विज्ञान के रूप में गृहीत होने लगा है। इस प्रणाली के अनुगामी भाषाविज्ञान के अध्ययन में किसी दूसरे शास्त्र की सहायता लेना पसन्द नहीं करते। यहाँ तक कि अर्थविज्ञान को भी उन्होंने अध्ययन की सीमा से बहिष्कृत कर रखा है। उनका लक्ष्य केवल भाषा के उच्चारित रूप का अध्ययन करना है। उनके अनुसार अर्थ दूसरे शास्त्रों का प्रतिपाद्य है, भाषाविज्ञान को केवल भाषा के उच्चरित रूप पर ही विचार करना चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह दृष्टि बड़ी ही एकांगी है। यदि अर्थ-निरपेक्ष उच्चारण ही भाषाविज्ञान का विषय है तो फिर मनुष्य की भाषा और पशु की भाषा में अन्तर क्या रहा? ध्वनि वाला अंश तो उभयनिष्ठ है, जैसी ध्वनि मनुष्य की वैसी पशु की।

मनुष्य की ध्वनि की विशिष्टता यही है कि उसमें अर्थवत्ता का योग रहता है जो पशु की ध्वनि में नहीं रहता। अर्थवाला अंश हटा देने पर मनुष्य और पशु की भाषा का प्रमुख भेद तिरोहित हो जाता है। दूसरी बात यह है कि अर्थ को छोड़ देने पर भाषा के प्रयोग का उद्देश्य क्या रह जायेगा।

एक बात और। भाषा के दो पक्ष हैं- ध्वनन और श्रवण। ध्वनन भाषा का केवल आधा भाग है। उसकी पूर्णता के लिए श्रवण उतना ही आवश्यक है जितना ध्वनन। सच तो यह है कि श्रवण के अभाव में ध्वनन का उपयोग समाप्तप्राय हो जाता है। ऐसी स्थिति में भाषा के अध्ययन को केवल ध्वनन तक सीमित रखना उसका अपूर्ण अध्ययन ही माना जायेगा। जिसे श्रवण कहते हैं वह भाषा का अर्थ - सापेक्ष अंश है। श्रवण तब तक सम्भव नहीं या सम्भव होने पर भी निरूपयोगी है, जब तक उससे अर्थबोध नहीं होता। भाषा का प्रयोग ही किस काम का यदि सुनने वाला उससे कुछ समझ नहीं सके ? इस दृष्टि से भी भाषा के अर्थ-पक्ष की उपेक्षा उचित नहीं जँचती।

रमेश कुमार यादव
असिस्टेंट - प्रोफेसर
हिन्दी - विभाग
डी. के. कॉलेज,
डुमरॉव बक्सर
(बिहार)